

आधुनिक हिन्दी कविता में निहित नियतिवाद का स्वरूप

अमित राज

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

हिन्दी साहित्य का इतिहास आदिकाल से आधुनिक काल तक विविध रूपों में विकसित हुआ है। इसमें विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। इन्हीं विचारधाराओं में 'नियतिवाद' एक महत्वपूर्ण दर्शन है, जिसका उद्गम छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आजीवक संप्रदाय से माना जाता है। मकखलि गोसाल द्वारा प्रतिपादित यह दर्शन स्वतंत्र इच्छा का निषेध करते हुए यह मानता है कि मानव जीवन की प्रत्येक घटना पूर्वनिर्णयित है और मनुष्य के कर्म से उसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं। मध्यकाल में कबीर और रैदास जैसे संत कवियों की रचनाओं में भी नियतिवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है, जो कर्मवाद और पुनर्जन्म की धारणा का विरोध करते हैं। आधुनिक काल में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दलित कविताओं में दिखाई देती है। हीरा डोम की प्रसिद्ध कविता "अछूत की शिकायत" में नियतिवादी तत्व स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं, जहाँ ईश्वर और धार्मिक व्यवस्था को चुनौती दी गई है। यह कविता गैर-ब्राह्मणिक और गैर-वैदिक दृष्टिकोण से जीवन की कठोर वास्तविकताओं को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार, नियतिवाद की दीर्घ परंपरा प्राचीन काल से आधुनिक काल तक हिन्दी कविता में जीवित रही है। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य इस परंपरा को आधुनिक हिन्दी कविता में तलाशना तथा यह दिखाना है कि कैसे दलित कविताओं में नियतिवाद के तत्व सामाजिक यथार्थ और असमानता के विरोध में साहित्यिक रूप धारण करते हैं।

बीज शब्द: आधुनिक हिन्दी कविता, नियतिवाद, आजीवक संप्रदाय

मूल आलेख

हिन्दी कविता का इतिहास पुराना है। हिन्दी साहित्य में हम यह पाते हैं कि यह आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल से होते हुए आधुनिक काल तक हमारे सामने अपने कई स्वरूपों में आता है। हिन्दी कविता की यह स्वर्णिम यात्रा अपनी विभिन्न शैली, धर्म, दर्शन, मान्यता तथा विधाओं को लेकर प्रस्तुत होती है। साहित्य में सबसे प्राचीनतम रूप काव्य का ही रहा है, इसी वजह से काव्य पर समय-समय पर अपने समकालीन तथा पूर्व के दार्शनिक चिंतनों का प्रभाव रहा है। कुछ दार्शनिक चिंतन जीवित होते हैं; लेकिन कुछ दार्शनिक चिंतन जो अपने समय में विराट रूप में विद्यमान रहते हैं, किन्तु समय के अंतराल में उनका प्रभाव कम हो जाता है। उन दर्शनों का मूल सिद्धांत इन्हीं काव्यात्मक यात्रा में पारंपरिक रूप में जीवित है। साहित्य में भक्तिकाल के काव्यों में यह प्रयास रूप से परलक्षित होता है कि भक्तिकाल के कवियों पर किसी न किसी दर्शन का प्रभाव रहा है। इन्हें निर्गुण काव्य धार, सगुण काव्य धारा में विभाजित कर के देखा गया है, फिर उन्हें भी कई संप्रदायों में बाँट कर रखा गया है। इन्हीं कवियों की परंपरा आधुनिक काल में भी आगे आधुनिक कवियों की कविता में दिखाई पड़ती है। इन्हीं दर्शनों के क्रम में 'नियतिवाद' का दर्शन भी हमारे सामने प्रस्तुत होता है, जिसका प्रभाव समय के लंबे अंतराल में रहा तथा उसने अपने समकालीन काव्य के प्रवृत्ति में भी मुख्य स्थान रखा। परंतु 'नियतिवादी' सिद्धांत के साथ समस्या यह रही कि इसका मुख्य ग्रंथ कहीं पर भी प्राप्त नहीं होता तथा यह परंपरा में ही विद्यमान रही तथा पल्लवित पुष्पित होती रही। नियतिवाद के इस सिद्धांत को धरातल रूप में अभ्यास करने का श्रेय छठी शताब्दी ईसा पूर्व के एक संघ को जाता है, जो माना जाता है कि यह बौद्ध एवं जैन संघ से भी बड़ा था तथा उस काल के लोगों और सम्राटों पर इसका विशेष प्रभाव था। नियतिवाद के इस सिद्धांत को धरातल रूप देने का श्रेय 'आजीवक'

संप्रदाय को जाता है। 'जैन' धर्म के परिप्रेक्ष्य से इस बात की पुष्टि करते हुए कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में नियतिवादी आजीवक संघ बढ़ा था। आधुनिक काल के आलोचक 'डॉ. धर्मवीर' कहते हैं कि "बात आजीवक धर्म की रह जाती है। 'भगवती सूत्र' के हिन्दी भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है 'इस प्रसंग में आचार्य भिक्षु ने बताया है कि उस युग में भी जब स्वयं तीर्थंकर विद्यमान थे, गोसालक जैसा पाखंडी व्यक्ति अधिक लोकप्रिय बन गया था। भगवान महावीर के अनुयायियों की संख्या केवल एक लाख उनसठ हजार थी, जबकि गोसालक के अनुयायियों की संख्या ग्यारह लाख एकसठ हजार थे।"¹ नियतिवाद एक पुरानी दीर्घ परंपरा रही है, जो आगे की परंपरा में जीवित रही है। डॉ. धर्मवीर इसी नियतिवाद या आजीवक परंपरा को कबीर तथा रैदास के संदर्भ में मध्यकाल में दिखाते हैं कि यह कैसे उनकी काव्यतामक प्रवृत्ति में दिखाई पड़ता है। इस शोध आलेख में इसी नियतिवाद की परंपरा को आधुनिक कवियों की कविता में दिखाना है कि वह परंपरा में अभी भी जीवित है। आधुनिक काल में इसे व्याख्यायित करने से पूर्व नियतिवाद क्या है, उसकी परिभाषा क्या है, यह देख लेना आवश्यक है। नियतिवाद एक दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण है जो मानता है कि सभी घटनाएं, जिनमें मानवीय निर्णय और कार्य शामिल हैं, पिछली घटनाओं या परिस्थितियों द्वारा पूरी तरह से निर्धारित होती हैं और इसीलिए किसी एक निश्चित और पूर्वनिर्धारित तरीके से घटित होती हैं। नियतिवाद के अनुसार स्वतंत्र इच्छा का अभाव होता है और भविष्य में होने वाली घटनाएं पहले से नियत होती हैं। यह किसी विशेष क्षेत्र के पर्यावरण या ऐतिहासिक प्रक्रियाओं द्वारा भी नियंत्रित हो सकता है। आजीवक पर गहन शोध करने वाले पाश्चात्य लेखक ए.एल.बासम ने नियतिवादी संघ का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "आजीवक दर्शन का मूल सिद्धांत भाग्य था जिसे सामान्यतः नियति कहा जाता है। बौद्ध और जैन स्रोत इस बात से सहमत हैं कि गोसाल कठोर नियतिवादी था, जिसने नियति को ब्रह्मांड की प्रेरक शक्ति और सभी दृश्य परिवर्तनों के एकमात्र कारक के रूप में प्रतिष्ठित किया।"²

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के इस नियतिवादी संघ आजीवक को स्थापित करने का श्रेय मक्खलि गोसाल नामक दार्शनिक को जाता है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर मध्यकाल तक यह दर्शन प्रत्यक्ष रूप से मिलता है; यह कई शोध से हमें पता चलता है, परंतु चौदहवीं शताब्दी ईसा के पश्चात यह धीरे-धीरे विलुप्त हो गई। विलुप्त से तात्पर्य यहाँ इसके अभ्यास से है, लेकिन इसके बाद भी यह परंपरा में कहीं न कहीं व्याप्त रही। कबीर के संदर्भ में यह बात सबसे पहले हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि "किन्तु प्रश्न है कि आखिर वह कौन सी वस्तु है जिसने कबीरदास को इतना महिमाशाली बना दिया है? हमने अब तक देखा है कि उनके अधिकांश विचार एक पुरानी दीर्घ परंपरा की देन है।"³

हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस व्याख्या से हम सहर्ष समझ सकते हैं कि वह कबीरदास को किसी और दर्शन के प्रभाव की बात कर रहे थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए डॉ. धर्मवीर यह साबित करते हैं कि कबीर जिस दीर्घ परंपरा का अनुसरण कर रहे थे वह आजीवक तथा उसके नियतिवादी सिद्धांत था। नियतिवाद का यह सिद्धांत मूलतः भारतीय कर्म सिद्धांत को नकारता है और यह कहता है कि मनुष्य के कर्म करने से कुछ नहीं होता; कोई बदलाव नहीं आता, जो नियत है वह हो कर रहेगा। अपने इसी विचार के कारण कर्म सिद्धांत की वह परिभाषा भी कट जाती है, जिसमें यह कहा जाता है कि अच्छे या बुरे कर्म के अनुसार कोई व्यक्ति या संसार का जीव अमुक योनि में पुनर्जन्म लेता है। लेकिन कबीर के संदर्भ में डॉ. धर्मवीर इसी नियतिवाद को स्थापित करते हुए तथा कर्मवाद के दर्शन को अस्वीकार करते हुए, उनके काव्य में दिखाते हैं कि कबीरदास की काव्यतामक वैचारिकी नियतिवाद से प्रेरित थी। कुछ पंक्ति को अगर हम देखेंगे तो यह स्पष्ट हो जाएगा, यथा –

बहुरि नहिं आवना

‘बहुरि नहि आवना या देस ।

जो-जो गए बहुरि नहि आए, पठवत नाहि संदेश

सुर नर मुनि औ पीर औलिया, देवी देव गनेस

धर-धर जनम सभी भरमे है, ब्रह्म बिसु महेस ।’

उपरोक्त कबीरदास की इन पंक्तियों को जब हम देखते हैं तो हमें इसमें नियतिवाद संबंधित तत्व की प्रधानता दिखती है। कर्म सिद्धान्त के विरोध में ईश्वर तथा पुनर्जन्म संबंधित विरोधी तत्व दिखलाई पड़ते हैं। नियतिवाद की व्याख्या जब हम देखते हैं तो हम यह भी पाते हैं कि वह ईश्वर की भी कल्पना को नहीं मानता है। नियतिवाद पर चर्चा करते हुए ईश्वर के संदर्भ में ए.एल.बासम की पुस्तक में यह उल्लेख आया है। वह लिखते हैं कि “इसी प्रकार सुख और दुख ईश्वर की शक्ति से नहीं आते। यदि आते हैं तो ईश्वर साकार है या निराकार? यदि ईश्वर साकार है, तो उसमें साधारण मनुष्य से अधिक सृजन करने की शक्ति नहीं होगी और यदि ईश्वर निराकार है तो उसकी निष्क्रियता आकाश (जो स्वयं निराकार है) से भी अधिक होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि ईश्वर भी हमारे (सामान्य प्राणियों) की तरह काम, क्रोध आदि भावनाओं के अधीन है, तो वह ब्रह्मांड का नियंता नहीं हो सकता और यदि वह काम-क्रोध से रहित है, तो संसार में सुख-दुख, अमीर-गरीब की विविधता जो उसने उत्पन्न की है, वह आ ही नहीं सकती। इसी लिए सृष्टिकर्ता नहीं है।”⁴

उपरोक्त बातों से हमने नियतिवाद की चर्चा से यह समझ लिया कि नियतिवाद दार्शनिक रूप से कैसे सोचते थे, वह मूलतः प्रकृति में घटित होने वाली घटनाओं से प्रेरित थे और उन्हें अपनाते थे, किसी कल्पना की बात नहीं सोचते थे। अब प्रश्न उठता है की यह आधुनिक काल में कैसे और किस तरह से पहुंची। नियतिवाद के प्रकृति को देखते हुए तथा आधुनिक काल के सामाजिक परिवेश तथा स्थिति को देखते हुए हम नियति को समकालीन समाज में व्याप्त परंपरा तथा जीवन-शैली के माध्यम से देख सकते हैं। चुकीं नियतिवाद भारतीय जमीन पर विकसित पहला नास्तिकवादी दर्शन था। कुछ लोग इस मत से इनकार करते हैं तथा वह बौद्ध और जैन को भी इस क्रम में मानते हैं, लेकिन इन दोनों दर्शन में स्वर्ग-नरक तथा पूर्वजन्म इत्यादि की जगह है। पंडित एन. ऐय्यास्वामी शास्त्री अपने एक लेख में लिखते हैं कि “भारत के दार्शनिक मतों को मोटे तौर पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है— ब्रह्मणिक और गैर ब्रह्मणिक इनमें से पहले को आस्तिक तथा दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। आस्तिक उन दर्शन प्रणालियों को कहा जाता है जो वेदों और उनकी शाखाओं को सर्वोच्च प्रामाणिकता के रूप में मान्यता देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह पश्चिम के ईश्वरवाद के समान है, उदाहरण स्वरूप संख्या दर्शन नास्तिक दर्शन है फिर भी इसे ब्रह्मणिक माना जाता है, क्योंकि यह वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। जैन मत को गैर ब्रह्मणिक माना जाता है क्योंकि यह वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता है। बौद्ध धर्म भी इसी कारण गैर ब्रह्मणिक है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार आस्तिक वह है जो परलोक के अस्तित्व में विश्वास रखता है। इस व्याख्या के अनुसार बौद्ध और जैनों को नास्तिक नहीं कहा जा सकता। जैसा की पहले कहा गया है बौद्धों और जैनों को नास्तिक कहना उचित नहीं होगा, उन्हें गैर वैदिक संप्रदाय कहना ज्यादा उचित होगा।”⁵

उपरोक्त चर्चा से हम यह समझ सकते हैं कि नियतिवाद का अभ्यास करने वाले आजीवक गैर-ब्रह्मणिक भी थे तथा गैर-वैदिक भी। इसलिए वह सही मायनों में नास्तिक थे। अपनी इसी परिभाषा का प्रयोग करते हुए हम आधुनिक काल की उन कविताओं में यह ढूँढ सकते हैं, जो इन दोनों को नकार कर चलते हों। आधुनिक काल में यह दलित कविताओं में मुख्य रूप से दिखाई देता है। दलित कविताओं की अगर चर्चा करें, तो सबसे पहले हमें महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संचालित सरस्वती पत्रिका की ओर देखना पड़ता है, जहाँ उन्होंने 1914 में आधुनिक काल के पहले दलित कवि ‘हीरा डोम’ को उनकी रचना ‘अछूत की शिकायत’ को सरस्वती पत्रिका में

जगह दी और आधुनिक काल दलित कविताओं का सुचारु रूप से सूत्रपात्र हुआ। ‘अछूत की शिकायत’ की अगर चर्चा करें तो इस कविता को हम उसी दीर्घ परंपरा से जोड़ कर देख सकते हैं, जो कबीर और रैदास की मध्यकाल की परंपरा में जुड़ती है। आधुनिक काल की इस कविता में नियतिवाद का वह स्वरूप दिखाई पड़ता है। हीरा डोम की यह कविता गैर ब्राह्मणिक भी है और ईश्वर को चुनौती देने के कारण गैर-वैदिक भी, कविता की पहली पंक्ति को ही अगर देखें तो वह इस प्रकार है—

“हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के सेहेबे से मिनती सुनाइबि।
हमनी के दुख भगवनओं न देखताबे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।
पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजाँ,
बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबि
हाय राम! धरम न छोडत बनत बाजे,
बेधरम होके कैसे मुँहवा दिखाइबि।।

अछूत की शिकायत कविता में हम यह देख सकते हैं की हीराडोम अपनी पीड़ा की व्याख्या कर रहा है और वह कह रहा की मैं तो रात-दिन दुख भोग रहा हूँ और मैं साहब से अपनी मित्रत फ़रियाद सुनाऊँगा कि हमारा दुख अब वह ईश्वर भी नहीं देखता है। हम कचहरी में जाएंगे और उसकी शिकायत करेंगे। इस कविता को जब पूरा हम अध्ययन करते हैं; तब ऐसी कई पंक्तियाँ आती हैं, जहाँ यह विरोधी रूप लिए हुए है। जैसे—

हमनी के राति दिन मेहनत करीलेजाँ,
दुइगो रुपयवा दरमहा में पाइबि।
ठकुरे के सुखसेत घर में सुतल बानी,
हमनी के जोति जोति खेतिया कमाइबि।
हकिमे के लसकरि उतरल बानी।

निष्कर्ष

नियतिवाद, जो छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आजीवक संप्रदाय से प्रारंभ हुआ, भारतीय दार्शनिक परंपरा में एक महत्वपूर्ण विचारधारा रही है। यह दर्शन स्वतंत्र इच्छा का निषेध कर मानव जीवन की प्रत्येक घटना को पूर्वनिर्णय मानता है। मध्यकाल में कबीर और रैदास जैसे संत कवियों की रचनाओं में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ वे पुनर्जन्म और कर्मवाद का विरोध करते हुए जीवन की यथार्थपरक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक काल में यह परंपरा विशेष रूप से दलित कविताओं में जीवित रही है। हीरा डोम की कविता *अछूत की शिकायत* इसका सशक्त उदाहरण है, जिसमें धार्मिक व्यवस्था और ईश्वर की अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाया गया है। यह कविता गैर-ब्राह्मणिक और गैर-वैदिक दृष्टिकोण से समाज में व्याप्त शोषण और अन्याय को उजागर करती है। इससे स्पष्ट होता है कि नियतिवाद ने साहित्य को केवल दार्शनिक आधार ही नहीं दिया, बल्कि सामाजिक

असमानताओं और पीड़ाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम भी प्रदान किया। निष्कर्षतः, नियतिवाद की परंपरा प्राचीन काल से आधुनिक दलित कविता तक निरंतर बनी रही है और यह आज भी सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करने का एक प्रभावी साधन है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. धर्मवीर, 2017 महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, पृष्ठ 37, वाणी प्रकाशन दिल्ली
2. बासम. ए.एल., 2009 हिस्ट्री एण्ड डॉक्टरिन ऑफ दी आजीविकाज, पृष्ठ 224, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
3. दुवेदी हजारीप्रसाद 2019 कबीर, पृष्ठ 113, वाणी प्रकाशन
4. बासम ए.एल., 2009 हिस्ट्री एण्ड डॉक्टरिन ऑफ दी आजीविकाज, पृष्ठ 231, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
5. शास्त्री पंडित एन ऐयस्वामी, 1997 स्टडी इन जैनिज़्म, पृष्ठ 1 द रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर कलकत्ता